[2001] 1 उम॰ नि॰ प॰ 156

मदन मोहन चौधरी

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

12 फरवरी, 1999

न्यायमूर्ति एस॰ सगीर अहमद और न्यायमूर्ति एम॰ जगन्नाथ राव

संविधान, 1950 — अनुच्छेद 226 ,32 और 235 — न्यायपालिका का ऋजुतापूर्वक कार्य करने और विधिसम्मत शासन का बनाए रखने का कर्तव्य — न्यायाधीशों का कर्तव्य न्यायपालिका की गरिमा बनाए रखने और जनता के विश्वास को कायम रखना है तथा उन्हें अपने द्वारा किए गए प्रशासनिक मामलों का न्यायिक पुनर्विलोकन करते समय भी विधिसम्मत शासन के लिए अपेक्षित सिद्धांतों को लागू करना चाहिए — वर्तमान मामले में उपरोक्त सिद्धांतों का पालन न किए जाने के कारण अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर किए जाने के दायी हैं।

सेवा विधि — बिहार सेवा संहिता, नियम 74 — अनिवार्य सेवानिवृत्ति — न्यायिक पुनर्विलोकन — अभिलेख पर इस संबंध में कोई युक्तियुक्त आधार न होना कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति लोक हित में थी — अपीलार्थी — न्यायिक अधिकारी की सत्यनिष्ठा और कार्य ठीक पाए जाने पर भी उसको एकमात्र इस आधार पर सेवानिवृत्त किए जाने का आदेश किया जाना कि उसने भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन एक मामले में अग्रिम जमानत प्रदान की थी — अपीलार्थी के आदेश में कोई दूरस्थ हेतु अंतर्वलित न होना — अपीलार्थी की इस आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति त्रुटिपूर्ण है और अपास्त किए जाने के दायी हैं ।

सेवा विधि — बिहार सेवा संहिता, नियम 74 — [सपठित संविधान, 1950 — अनुच्छेद 235] — न्यायिक अधिकारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति — असंसूचित प्रतिकूल टिप्पणियों का होना — उनके आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दूषित है — अपीलार्थी की चरित्र पुस्तक में 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए प्रतिकूल टिप्पणियां एक ही समय में अभिलिखित किया जाना सामान्य अनुक्रम में की गई नहीं मानी जा सकती — अभिलेख पर यह निष्कर्ष निकालने के लिए सामग्री न होना कि अपीलार्थी की कोई उपयोगिता नहीं रही है — अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति अविधिमान्य है तथा उच्च न्यायालय की सिफारिश के आधार पर राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाने के दायी हैं ।

प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय की सिफारिश, जिसके आधार पर अपीलार्थी को जो अपर जिला और सेशन न्यायाधीश था, अनिवार्य सेवानिवृत्त किया गया था, इस दु:खद तथ्य को प्रकट करती है कि राज्य का उच्चतम न्यायिक निकाय जो विधिसम्मत शासन के प्रतिकूल कोई कार्य किए जाने या मनमौजी रीति या मनमाने तौर पर कोई कार्य किए जाने का विरोध करता है, प्रशासनिक कार्य करते समय स्वयं ऐसी रीति में कृत्य कर सकता है । तब भी, यह अभिवाक्

कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश "विभाजित व्यक्तित्व" से ग्रस्त होते हैं, इस तथ्य को देखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि हो सकता है, यद्यपि प्रशासनिक क्षेत्र में उन्होंने साधारण नौकरशाह के रूप में कृत्य किया हो, किंतु एक बार न्यायाधीश का परिवेश धारण कर लेने पर वे अपने सभी पूर्व संबंधों और साहचर्य को भूल जाते हैं। यह बदलाव इतना पूर्ण और वास्तविक होता है कि यद्यपि वे स्वयं विनिश्चय प्रक्रिया के भाग थे, किंतु वे न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय अपने स्वयं के प्रशासनिक विनिश्चयों को अभिखंडित करते हैं और इस प्रकार भारतीय न्यायपालिका के गौरव और स्वतंत्रता को बनाए रखते हैं जिसमें जनता ने सदैव अपना अटूट विश्वास रखा है। तथापि, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय की सिफारिश के आधार पर राज्य सरकार द्वारा पारित किया गया तारीख 2.8.1997 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश मान्य ठहराया गया है और इस आदेश की विधिमान्यता की संवीक्षा किए जाने के लिए यह इस अपील में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित — भारतीय संविधान ने प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय की स्थापना किए जाने के लिए उपबंध करते हुए प्रत्येक राज्य में स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। संविधान ने प्रत्येक उच्च न्यायालय को अत्यंत व्यापक शक्तियां और विस्तृत अधिकारिता प्रदान की है जिसमें इसकी अधिकारिता क्षेत्र के अधीन आने वाले सभी न्यायालयों और अधिकरणों के ऊपर अधीक्षण की शक्ति भी सम्मिलित है। निस्संदेह न्यायपालिका का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक अधीनस्थ न्यायालय हैं क्योंकि यही वह न्यायालय हैं जिनमें न्यायपालिका का जनता से सीधा संबंध होता है। कार्यपालिका से अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए संविधान, 1950 में अनुच्छेद 233 से 237 का उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 233, जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में है और यह उपबंध करता है कि किसी राज्य में जिला न्यायाधीश नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति तथा जिला न्यायाधीश की तैनाती और प्रोन्नति उस राज्य का राज्यपाल ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता को प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके करेगा। (पैरा 17)

संविधान की स्कीम से यह प्रकट है कि यद्यपि अधीनस्थ-न्यायपालिका के अधिकारी मूलरूप से और आवश्यकत: सरकारी सेवक हैं, उनकी संपूर्ण सेवा उच्च न्यायालय के नियंत्रणाधीन हैं और राज्यपाल कोई नियुक्ति या पद से हटाने या अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए कार्रवाई सहित कोई अनुशासनिक कार्रवाई उच्च न्यायालय से "परामर्श" किए बिना नहीं कर सकता, जैसा कि अनुच्छेद 233 और अनुच्छेद 234 दोनों के सांविधानिक प्रभाव और अनुच्छेद 235 में इंगित किए गए उच्च न्यायालय के "नियंत्रण" द्वारा अपेक्षित है। पद "परामर्श" से सामान्यतया अर्थ में "सलाह लेना" या "मंत्रणा करना" अभिप्रेत है। इस प्रकार राज्यपाल सलाह लेने वाला और उच्च न्यायालय सलाह देने वाला है जो कि राज्य न्यायिक सेवा से संबंधित नियुक्तियों, प्रोन्नतियों, अनुशासनिक कार्रवाई, अनिवार्य सेवानिवृत्ति इत्यादि सम्मिलित करते हुए सेवा के सभी मामलों के संबंध में एक विशेषज्ञ निकाय माना जाता है। चूंकि राज्यपाल जब तक कि वह उच्च न्यायालय से परामर्श नहीं करता, स्वत: कृत्य नहीं कर सकता। संविधान ने उच्च न्यायालय को एक महत्वपूर्ण और महान कर्तव्य सौंपा है कि राज्यपाल को सर्वश्रेष्ठ सलाह या राय दे; यह सलाह, समस्या जिस पर राज्यपाल द्वारा सलाह या परामर्श की ईप्सा की गई है, से संबंधित सुसंगत सामग्री और अभिलेख को विचार में लेने के पश्चात् और उस पर सम्यक् रूप से चर्चा करने के पश्चात् दी जाती है। इसलिए यह राज्यपाल और उच्च न्यायालय के बीच आवश्यकत: विश्वास और भरोसे का विषय है। राज्यपाल को अपनी सलाह देने के मामले में उच्च न्यायालय मनमाने तौर पर कृत्य नहीं कर सकता अन्यथा यह उक्त विश्वास के प्रति विश्वासघात होगा। यदि सलाह अभिलेख पर की किसी सामग्री से समर्थित नहीं है और प्रकृति में मनमानी है तो इसका कोई बाध्यकारी महत्व नहीं होगा।(पैरा 24 और 25)

विभिन्न जिला न्यायाधीशों द्वारा चरित्र पुस्तक में की गई प्रविष्टियां न्यायालय द्वारा निर्णय के आरंभ के भाग में पहले ही उल्लेख की जा चुकी हैं। उच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न अवसरों पर की गई टिप्पणियां भी ऊपर वर्णन की गई हैं। यह भी पता चला है कि वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए अपीलार्थी की चरित्र पुस्तक में कोई प्रविष्टियां नहीं की गई थीं। इन वर्षों की प्रविष्टियां समकालिक रूप से एक ही समय लिखी गई थीं और अपीलार्थी को "सी" ग्रेड अधिकारी के रूप में वर्गीकृत किया गया था। उपर्युक्त तीन वर्षों की प्रविष्टियों के संदर्भ में इस न्यायालय में फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में उच्च न्यायालय द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति यह है कि वे "एक ही समय में" लिखी गई थीं और हम

यह जोड़ सकते हैं कि अधिकारी को पद से हटने के लिए मजबूर किया गया था । वह तारीख जिस पर यह प्रविष्टियां की गई थीं मूल अभिलेख में या प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में इंगित नहीं की गई थीं । ये अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गई थीं और पूर्ण-न्यायालय द्वारा इन पर तारीख 30.11.1996 को विचार किया गया था किंतु यह स्पष्ट है कि ये प्रविष्टियां उस समय लिखी गई थीं जब स्थायी समिति ने अपीलार्थी को सेवानिवृत्त करने का अपना विचार पहले से ही बना लिया था क्योंकि इसने तारीख 6.11.1996 को कार्यालय को यह निदेश दिया था कि अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए नोट प्रस्तुत करें । उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि वरिष्ठ न्यायिक सेवा में उसकी प्रोन्नति के पूर्व की सभी प्रविष्टियां खराब नहीं थीं और कनिष्ठ न्यायिक सेवा या वरिष्ठ न्यायिक सेवा के सदस्य के रूप में उसकी सत्यनिष्ठा पर कभी संदेह नहीं किया गया था। भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन मामले में अग्रिम जमानत प्रदान किए जाने को विशेष रूप से तब जब उसका विरोध करते हुए एक प्रतिकूल मामला था, इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में विधिक रुप से अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने का आधार नहीं बनाया जा सकता था । अपीलार्थी द्वारा प्रदान की गई जमानत के रद्द किए जाने के लिए फाइल की गई याचिका ग्रहण करने और अंततः उसे मंजूर करने के लिए विद्वान न्यायाधीश की जो कोई भी भावना रही हो, तथ्य यह है कि यह पूर्ण सद्भाव के साथ न्यायिक अधिकारिता में पारित किया गया एक आदेश था । यह गलत आदेश किया गया हो सकता है किंतु यह बाह्य विचारणाओं पर आधारित और उनसे प्रेरित किया गया आदेश नहीं था । इस प्रकार यह ऐसा मामला था जहां ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर युक्तियुक्त रुप से यह राय दी जा सकती हो कि अपीलार्थी का बिहार सेवा संहिता के नियम 74 के निबंधनानुसार सेवा से समयपूर्व सेवानिवृत्त किया जाना लोक हित में होगा । तीन वर्षों अर्थात् 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए 'एक ही समय में' अभिलिखित प्रविष्टियां विचार में नहीं ली गई थीं । वे अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गई थीं और अगले दिन अर्थात् तारीख 30.11.1996 को पूर्ण न्यायालय ने, उन्हें अभ्यावेदन करने का कोई अवसर दिए बिना सेवानिवृत्त करने का विनिश्चय किया तथापि उन्होंने अभ्यावेदन किया, किंतु यह एक वर्ष पश्चात् दिसंबर, 1993 में नामंजूर कर दिया गया था । (पैरा 29 और 30)

वर्तमान मामले में, वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए प्रतिकूल टिप्पणियां सामान्य अनुक्रम में अभिलिखित नहीं की गई थीं अपितु "एक ही समय में" लिखी गई थीं और वह भी तब जब उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने की राय पहले ही बना ली थी । इन टिप्पणियों के विरुद्ध किये गए अभ्यावेदन पर शीघ्रता से विचार नहीं किया गया था अपितु उच्च न्यायालय द्वारा एक वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् निपटारा किया गया था । यह टिप्पणियां जो अपीलार्थी की चरित्र पुस्तक में एक ही समय में अभिलिखित की गई थीं और अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गईं थीं, पर पूर्ण न्यायालय द्वारा तारीख 30.11.1996 को विचार किया गया था जिसने अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने की प्रस्थापना को अनुमोदित किया था। अपीलार्थी को विद्वान न्यायमूर्ति बी० के० राय द्वारा 1990 में "बी" प्लस वर्गीकृत किया गया था। अगले तीन वर्षों के लिए कोई वर्गीकरण नहीं किया गया था और जब उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए कार्रवाई इस आधार पर आरंभ की गई कि उसने एक मामले में भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन अग्रिम जमानत प्रदान की थी, वर्ष 1991-92,1992-93, और 1993-94 के लिए वर्गीकरण "एक ही बार में" किया गया था जो अयुक्तियुक्त है और ऋजु नहीं है । इसके अतिरिक्त, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए 1996 में आदेश किया गया था । वर्ष 1994-95 के लिए और 1995-96 के लिए अपीलार्थी का क्या वर्गीकरण किया गया था, यह हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए मूल सेवा-अभिलेख में इंगित नहीं किया गया है । इन विसंगतियों के साथ इस मामले की अन्य विस्मयजनक परिस्थितियों के आधार पर हमारा यह मत है कि वर्ष 1991-92, 1992-93, और 1993-94 के लिए अपीलार्थी का "सी" श्रेणी का अधिकारी होने के रूप में वर्गीकरण विधिक रूप से विचार में नहीं लिया जा सकता था । यदि इन टिप्पणियों को अपवर्जित किया जाता है तो बैंकुठनाथ दास वाले मामले में अधिकथित (iii) सिद्धांत तुरन्त ही लागू हो जाता है और अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने की आक्षेपित कार्रवाई इस अर्थ में मनमानी कही जा सकती है कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था कि अपीलार्थी की न्यायिक अधिकारी के रुप में कोई उपयोगिता नहीं रही थी और वह बेकार हो गया

था जिसके कारण उसे हटा दिया जाना चाहिए। उपर्युक्त कारणों से, अपील मंजूर की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया तारीख 22.7.1998 का निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिका मंजूर की जाती है और राज्य सरकार द्वारा पारित किया गया तारीख 2.8.1997 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश, अपीलार्थी को सभी पारिणामिक फायदे देते हुए अभिखण्डित किया जाता है। (पैरा 37 और 38)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1998]	(1998) 7 एस॰ सी॰ सी॰ 310 = (1998) 6 जजमेंट टुडे एस॰ सी॰ 34 : **एम॰ एस॰ बिंदरा** बनाम **भारत संघ और अन्य;**	34
[1998]	(1998) 8 जजमेंट टुडे एस॰ सी॰ 326 : **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **सूर्यकांत चुन्नी लाल;**	34
[1994]	ए॰ आई॰ आर॰ 1994 एस॰ सी॰ 1261 : **भारत संघ** बनाम **वी॰ पी॰ सेठ;**	34
[1993]	ए॰ आई॰ आर॰ 1993 एस॰ सी॰ 383 = (1993) सप्ली॰ 2 एस॰ सी॰ सी॰ 391 : **सचिव, हरिजन और जनजाति कल्याण विभाग, भुवनेश्वर** बनाम **नित्यानंद पति;**	34
[1992]	[1992] 2 उम॰ नि॰ प॰ 190 = ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1020 = (1992) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 299 : **बैंकुठ नाथ दास** बनाम **मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बारीपद;**	33,35,37
[1992]	ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1368 = (1992) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 317 : **डाक-तार बोर्ड** बनाम **सी॰ एस॰ एन॰ मूर्ति;**	34
[1990]	[1990] 3 उम॰ नि॰ प॰ 491 = ए॰ आई॰ आर॰ 1989 एस॰ सी॰ 2218 = (1989)4 एस॰ सी॰ सी॰ 664 : **वैद्यनाथ महापात्र** बनाम **उड़ीसा राज्य;**	32
[1988]	ए॰ आई॰ आर॰ 1988 एस॰ सी॰ 1388 = (1988)3 एस॰ सी॰ सी॰ 211 = (1988) सप्ली 1 एस॰ सी॰ आर॰ 332 : **रजिस्ट्रार मद्रास उच्च न्यायालय** बनाम **आर॰ राजय्या;**	26
[1987]	ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 331 = [1987] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 136 = (1986) 4 एस॰ सी॰ सी॰ 632 : **केरल राज** बनाम **ए॰ लक्ष्मीकुट्टी;**	28
[1987]	[1987] 3 उम॰ नि॰ प॰ 531 = ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 948 = (1987) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 188 : **बृज मोहन सिंह चोपड़ा** बनाम **पंजाब राज्य;**	32

[1982] ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 1579 = [1983] 1 एस० सी० आर० 593 = (1982) 3 एस० सी० सी० 412 :
एम०एम० गुप्ता बनाम **जम्मू और कश्मीर राज्य;** 27

[1980] [1980] 3 उम० नि० प० 907 = ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 563 = (1980)2 एस० सी० सी० 15 :
भारत संघ बनाम **एम०ई० रेड्डी ;** 32

[1979] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 193 = [1979] 1 एस० सी० आर० 26 = (1979) 2 एस० सी० सी० 34 :
मुख्य न्यायाधीश आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय बनाम **एल० वी० ए० दीक्षितुलु;** 22

[1957] ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 246 = [1957] एस० सी० आर० 414 :
मोहम्मद घोस बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य।** 22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की सिविल अपील सं० 787.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री प्रेरणा स्वरूप और सर्वश्री प्रमोद स्वरूप और प्रवीण स्वरूप

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एन० के० सिंह और उमानाथ सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस० सगीर अहमद ने दिया ।

न्या० अहमद — इजाजत दी गई ।

2. उच्च न्यायालय की सिफारिश, जिसके आधार पर अपीलार्थी को जो अपर जिला और सेशन न्यायाधीश था, अनिवार्य सेवानिवृत्त किया गया था, इस दु:खद तथ्य को प्रकट करती है कि राज्य का उच्चतम न्यायिक निकाय जो विधिसम्मत शासन के प्रतिकूल कोई कार्य किए जाने या मनमौजी रीति या मनमाने तौर पर कोई कार्य किए जाने का विरोध करता है, प्रशासनिक कार्य करते समय स्वयं ऐसी रीति में कृत्य कर सकता है । तब भी, यह अभिवाक् कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश "विभाजित व्यक्तित्व" से ग्रस्त होते हैं, इस तथ्य को देखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि यद्यपि प्रशासनिक क्षेत्र में उन्होंने साधारण नौकरशाह के रुप में कृत्य किया हो सकता है, किंतु एक बार न्यायाधीश का परिवेश धारण कर लेने पर वे अपने सभी पूर्व संबंधों और सहचारिता को भूल जाते हैं । यह बदलाव इतना पूर्ण और वास्तविक होता है कि यद्यपि वे स्वयं विनिश्चय प्रक्रिया के भाग थे, किंतु वे न्यायिक पुनर्विलोकन की अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय अपने स्वयं के प्रशासनिक विनिश्चयों को अभिखंडित करते हैं और इस प्रकार भारतीय न्यायपालिका के गौरव और स्वतंत्रता को बनाए रखते हैं जिसमें जनता ने सदैव अपना अटूट विश्वास रखा है । तथापि, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय की सिफारिश के आधार पर राज्य सरकार द्वारा पारित किया गया तारीख 2.8.1997 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश मान्य ठहराया गया है और इस आदेश की विधिमान्यता की संवीक्षा किए जाने के लिए यह इस अपील में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है ।

3. मामले के गुणागुण पर विचार करने के पूर्व हम अपीलार्थी के सेवा अभिलेख की संवीक्षा कर सकते हैं जिसने तारीख 15.5.1975 को न्यायिक सेवा में अस्थायी मुंसिफ का पदभार ग्रहण किया था । उसकी उक्त पद पर तारीख 8.2.1980 को पुष्टि की गई थी और तारीख 16.5.1985 को उप-न्यायाधीश (सब-जज) के पद पर प्रोन्नत किया गया था । उसकी उप-न्यायाधीश के पद पर तारीख 19.1.1988 को पुष्टि की गई थी । अपीलार्थी को 1991 में उच्च न्यायिक सेवा में प्रोन्नत किया गया था और तारीख 15.7.1991 से अपर जिला और सेशन न्यायाधीश के पद पर कार्यवहन करने का दायित्व दिया गया था । उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति किए जाने की तारीख तक उनकी उक्त पद पर पुष्टि नहीं की गई थी ।

4. जिला न्यायाधीशों जिनके अधीन अपीलार्थी ने कार्य किया था, द्वारा चरित्र पुस्तक में अभिलिखित की गई प्रविष्टियों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"1975-76 (जिला मुजफ्फरपुर) - कार्य योग्यता संतोषजनक और कार्यमात्रा में सुधार किया जा सकता है। बार से संबंध संतोषजनक हैं।

1976-77 (जिला मुजफ्फरपुर) - कार्य योग्यता संतोषजनक और कार्यमात्रा ठीक है । बार से संबंध सही हैं ।

1977-78 (जिला गया) - वह बुद्धिमान है । उनके निर्णय औसत क्वालिटी के हैं । कार्य मात्रा संतोषजनक है।

1978-79 - कोई टिप्पणी नहीं ।

1979-80 (जिला मुंगेर) - कुल मिलाकर उनका कार्य और आचरण औसत है। बार के सदस्यों और न्यायिक अधिकारियों से संबंध संतोषजनक हैं । वह श्रमशील और कार्य में रुचि लेते हैं ।

1980-81 - कोई टिप्पणी नहीं ।

1981-82 (जिला पालामऊ) - बुद्धिमान और कठोर परिश्रम करते हैं । अच्छे निर्णय लिखते हैं। सत्यनिष्ठावान हैं ।

1982-83 (जिला पालामऊ) - सत्यनिष्ठा के संबंध में अच्छी प्रतिष्ठा है ।

1983-84 (जिला पालामऊ) - न्यायिक अधिकारी के पद पर अच्छा कार्य कर रहे हैं।

1984-85 (जिला हजारीबाग) - उन्हें विधि और प्रक्रिया का संतोषजनक ज्ञान है । मामलों का निपटारा करने में परिश्रम करते हैं और शीघ्रता से निपटाते हैं । वह सक्षम अधिकारी हैं । उन्होंने अवधि के दौरान ईमानदारी और निष्पक्षता के लिए प्रतिष्ठा बनाए रखी है । नजारत और लेखा के भारसाधक अधिकारी के रूप में उनसे प्रभावी नियंत्रण करना अपेक्षित है। संतोषजनक है । बार और अन्य न्यायिक अधिकारियों से अच्छे संबंध बनाए हुए हैं।

1986-87 (जिला औरंगाबाद) - विधि और प्रक्रिया का ज्ञान संतोषजनक है । वह मेहनती है और मामलों का शीघ्रता से निपटारा करते हैं । मामलों का निपटारा संतोषजनक है । वह एक कार्यकुशल अधिकारी हैं। वह अच्छी तरह से विचार करने के पश्चात् सिविल और दाण्डिक दोनों मामलों के निर्णय और आदेश करते हैं। उनकी एक ईमानदार और निष्पक्ष अधिकारी के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा है। उनके बार से और अन्य न्यायिक अधिकारियों से मधुर संबंध हैं।

1987-88 (जिला औरंगाबाद) - विधि और प्रक्रिया का ज्ञान संतोषजनक है । वह मेहनती है और मामलों का शीघ्रता से निपटारा करते हैं । मामलों का निपटारा संतोषजनक है । वह एक कार्यकुशल अधिकारी हैं। किसी ने भी उनकी ईमानदारी और निष्पक्षता के संबंध में कोई परिवाद नहीं किया है। सत्यनिष्ठा और परिश्रम करने के संबंध में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा है । कमियां, यदि कोई हो: — कोई नहीं । अच्छा । उनके न्यायिक अधिकारियों और बार के साथ अच्छे संबंध हैं ।

1988-99 (जिला औरंगाबाद) - विधि और प्रक्रिया के संबंध में उनका ज्ञान संतोषजनक है । वह एक मेहनती, कार्यकुशल अधिकारी हैं और मामलों को शीघ्र निपटाते हैं। उनकी

ईमानदारी और निष्पक्षता के संबंध में अच्छी प्रतिष्ठा है । वह मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए उपयुक्त और योग्य है। कमियां, यदि कोई हो: — कोई नहीं । अच्छा। उनके अन्य न्यायिक अधिकारियों और कर्मचारिवृन्द और बार से अच्छे संबंध हैं ।

1989-90 (जिला बेगूसराय) - विधि और प्रक्रिया का ज्ञान संतोषजनक है । वह मेहनती हैं और मामलों का शीघ्रता से निपटारा करते हैं । उनका अधीनस्थ न्यायालयों के बीच कार्य वितरण और पर्यवेक्षण और नियंत्रण ठीक है । वह एक कार्यकुशल अधिकारी हैं। ईमानदारी और निष्पक्षता के संबंध में वह अच्छी प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं । कमियां यदि कोई हो: — कोई नहीं, वह न्यायालय में प्राय: ही अपना संयम खो देते हैं किंतु निर्णय और आदेश अच्छा लिखते हैं।

1990-91 (जिला बेगूसराय) - विधि और प्रक्रिया की अच्छी जानकारी है। वह मेहनती हैं और मामलों का शीघ्रता से निपटारा करते हैं। उनका अधीनस्थ न्यायालयों के बीच कार्य वितरण, पर्यवेक्षण और उन पर नियंत्रण ठीक है। वह एक कार्यकुशल अधिकारी हैं । बार के सदस्य और मुकदमा लड़ने वाले व्यक्तियों का उनमें विश्वास है । वह अत्यंत अच्छे अधिकारी हैं । उनका अपने कर्मचारिवृन्द और अधीनस्थों पर अच्छा नियंत्रण है । उनके बार और न्यायिक अधिकारियों के साथ अच्छे संबंध हैं ।

5. उच्च न्यायालय के निरीक्षण न्यायाधीशों द्वारा किया गया वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार है :—

"1984 - बी (औसत) न्यायमूर्ति अभिराम सिंह द्वारा

1987 - बी (संतोषजनक) न्यायमूर्ति आर० सी० पी० सिन्हा द्वारा

1988 - अच्छा (न्यायमूर्ति एस० राय द्वारा)

1990 - बी प्लस (न्यायमूर्ति बी.के.राय द्वारा)"

6. अपीलार्थी ने जिला और सेशन न्यायाधीश भारसाधक मधुबनी के रूप में कार्य करते हुए तारीख 14 नवम्बर, 1995 को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन एक मामले में कुछ अभियुक्तों को अग्रिम जमानत प्रदान की थी। जमानत आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष 1995 की दाण्डिक प्रकीर्ण मामला सं० 18207 में चुनौती दी गई थी, जिस पर उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने तारीख 26.3.1996 को निम्नलिखित आदेश पारित किया था:—

"विरोधी पक्षकार संख्या 2 और विरोधी पक्षकार संख्या 3 के विरुद्ध किए गए अभिकथन अन्यों के विरुद्ध किए गए अभिकथनों से अधिक गंभीर प्रतीत होते हैं, यद्यपि सभी विरोधी पक्षकारों को नोटिस (सूचना) जारी किया गया था, सेवा रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि नोटिस विधिमान्य रूप से तामील किया गया माना गया है क्योंकि संबंधित विरोधी पक्षकारों ने पावती देने से इनकार किया था । मेरे मत में, याची को अकेले विरोधी पक्षकार सं० 2 और विरोधी पक्षकार सं० 3 के विरुद्ध नोटिस तामील के लिए नए सिरे से कदम उठाने चाहिएं ।

अपेक्षित वस्तुएं रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा तारीख 1.4.1996 (सोमवार) तक फाइल की जाएं जिसमें असफल होने पर संबंधित विरोधी पक्षकारों के विरुद्ध यह आवेदन, न्यायपीठ को आगे कोई निर्देश किए बिना नामंजूर हो जाएगा ।

इसके साथ ही, कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि इस मामले को प्रशासनिक पक्ष के समक्ष प्रस्तुत करे जिससे कि अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले अधिकारी के आचरण की परीक्षा की जा सके । कार्यालय उन सेशन न्यायाधीश (भारसाधक) का नाम भी प्रकट करे जिन्होंने तारीख 14.11.1995 को आदेश पारित किया था ।"

7. यह मामला उन्हीं विद्वान न्यायाधीश द्वारा तारीख 22.7.1996 को अंतिम रूप से निपटाया गया था और दो अभियुक्तों को प्रदान की गई अग्रिम जमानत अपास्त की गई थी । इस आदेश में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गई हैं :—

"विद्वान सेशन न्यायाधीश (भारसाधक) के आदेश से यह प्रतीत होता है कि उन्होंने इस तथ्य पर भी विचार किया था कि घटना के संबंध में एक काउंटर केस भी संस्थित किया गया था और इसीलिए, 'मिथ्या से आलिप्त किए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता' । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि अभियोजन पक्ष के दो व्यक्तियों के शरीर के महत्वपूर्ण भागों पर घोर क्षतियां पहुंची थीं, मैं तर्क को समझने में असमर्थ हूं । यदि घटना के संबंध में कोई काउंटर वर्णन भी किया गया था, तो भी निचले न्यायालय को अंतिम निष्कर्ष निकालने के पूर्व घटना की रीति पर और इस तथ्य पर विचार करना चाहिए था कि अभियोजन पक्ष को घोर क्षतियां पहुंची थीं जो स्वयं कारित की गईं या बनायी गईं नहीं कही जा सकती । इस पर विचार किया जाना अत्यंत आवश्यक था क्योंकि विरोधी पक्ष गिरफ्तारी से पूर्व जमानत के विशेषाधिकार की ईप्सा कर रहे थे । यह जनता को सही संदेश नहीं देता यदि शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर घोर क्षतियां कारित करने वाले अभियुक्त व्यक्ति अभिरक्षा में नहीं लिए जाते और अग्रिम जमानत प्रदान कर दी जाएं । यदि जमानत रद्द किए जाने के मामले में भी न्यायालय अग्रिम जमानत और नियमित जमानत के बीच विभेद नहीं करता और ऐसा होने पर भी यदि वरिष्ठ न्यायालय यह पाता है कि स्वयं विवेकाधिकार का प्रयोग उचित नहीं था और आपराधिक न्याय प्रशासन में जनता के विश्वास को समाप्त करता है तो इसका यह कर्तव्य है कि हस्तक्षेप करे और दोष को सही करे । इसके अलावा, जैसा कि ऊपर कथन किया जा चुका है यह भी अभिकथन किए गए हैं कि विरोधी पक्ष, याची और उसके परिवार के सदस्यों और अभियोजन-साक्षियों को धमकियां दे रहा है और पुलिस का दृष्टिकोण सही नहीं है ।"

8. विद्वान न्यायाधीश द्वारा जारी किए गए निदेश के अनुसरण में कार्यालय ने एक टिप्पण प्रस्तुत किया जिस पर स्थायी समिति ने तारीख 6.11.1996 को विचार किया था और निम्नलिखित संकल्प पारित किया गया था :—

"कार्यसूची	विनिश्चय
विद्वान् सेशन न्यायाधीश (भारसाधक) मधुबनी द्वारा दाण्डिक प्रकीर्ण मामला सं॰ 18207/95 में पारित किए गए तारीख 26.3.1996 के आदेश पर विचार करना । (XIX-32-96).	अधिकारी से संबंधित कार्यालय टिप्पणियों पर विचार करने के पश्चात् यह संकल्प किया जाता है कि कार्यालय श्री मदन मोहन चौधरी, अपर सेशन न्यायाधीश, मधुबनी की बिहार सेवा संहिता के नियम 74 के अधीन अनिवार्य सेवानिवृत्ति किए जाने के लिए आवश्यक टिप्पण प्रस्तुत करेगा।"

9. तत्पश्चात् कार्यालय ने बिहार सेवा संहिता के नियम 74 के अधीन अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए आवश्यक टिप्पण तैयार किए थे । इस टिप्पण पर स्थायी समिति ने तारीख 21.11.1996 की अपनी बैठक में विचार किया था और निम्नलिखित संकल्प पारित किया गया था :—

"कार्यसूची	विनिश्चय
अधीनस्थ न्यायपालिका के कुछ अधिकारियों के विरुद्ध बिहार सेवा संहिता के नियम 74 के के अधीन कार्रवाई किए जाने की वांछनीयता पर विचार करना। (XIX-31-96)	निम्नलिखित 4 अधिकारियों :— (1) श्री मदन मोहन चौधरी अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, मधुबनी। (2)........................ (3)........................ (4)........................ में से प्रत्येक के संपूर्ण सेवा अभिलेख पर विचार करने के

पश्चात् यह विनिश्चय किया जाता है कि उन्हें और अधिक सेवा में रखना लोक हित में नहीं है और इसलिए उन्हें बिहार सेवा संहिता के नियम 74 (ख) (ii) के अधीन सेवा से अनिवार्यतः सेवानिवृत्त कर दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विनिश्चय इसे परिचालित किए जाने के बजाए उच्च न्यायालय नियम के अध्याय-I, भाग-I के नियम 3(X) के अनुसार तारीख 30 नवंबर, 1996 को होने वाली उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायालय की बैठक के समक्ष रखा जाए।''

10. पूर्ण न्यायालय बैठक तारीख 30.11.1996 को हुई थी और स्थायी समिति के संकल्प (ऊपर प्रस्तुत किया गया है) का अनुमोदन किया गया था। पूर्ण न्यायालय बैठक के कार्यवृत्त का सुसंगत उद्धरण निम्नलिखित प्रकार है :—

''मद सं॰ 7 — बिहार सेवा संहिता, 1952 के नियम 74 के अधीन न्यायिक अधिकारियों की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संबंध में स्थायी समिति के विनिश्चय पर विचार करना।

स्थायी समिति की तारीख 21.11.1996 की बैठक में बिहार सेवा संहिता के नियम 74(ख) के अधीन निम्नलिखित न्यायिक अधिकारियों की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संबंध में किए गए विनिश्चय पर पूर्ण न्यायालय द्वारा विचार किया गया और उसका अनुमोदन किया जाता है।

1. श्री मदन मोहन चौधरी
   अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, मधुबनी।
2. ....
3. ....
4. ....

राज्य सरकार से अनुरोध किया जाता है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए सिफारिश किए गए उपर्युक्त अधिकारियों को, उनको दिए जाने वाले तीन माह के नोटिस के बदले में तीन माह का वेतन अग्रिम तौर पर प्रदान करे।

इसके अतिरिक्त यह संकल्प भी लिया जाता है कि संबंधित जिला एवं सेशन न्यायाधीश को निदेश दिया जाए कि उपर्युक्त अधिकारियों को उनके न्यायिक कार्यों से भारोन्मुक्त करें।''

11. राज्य सरकार ने उच्च न्यायालय की सिफारिश पर कार्य करते हुए तारीख 2.8.1997 के आदेश द्वारा अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की थी।

12. यह उल्लेख किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 की चरित्र पुस्तकों में कोई टिप्पणियां नहीं की थीं किंतु यह टिप्पणियां एक ही समय में दी गई थीं और इसे ''सी'' ग्रेड अधिकारी वर्गीकृत किया गया था। इन टिप्पणियों के संबंध में, विरोधी पक्ष ने प्रत्युत्तर शपथपत्र में निम्नलिखित कथन किया :—

''तत्पश्चात्, याची को उसकी चरित्र पुस्तक में लगातार तीन वर्षों तक ''सी'' ग्रेड दिया गया था और याची की चरित्र पुस्तक में तीन वर्षों का एक ही बार में मूल्यांकन किया जाना एकमात्र मामला नहीं है अपितु यही पद्धति सभी न्यायिक अधिकारियों के मामलों में अनुसरण की जा रही थी। याची को ग्रेड ''सी'' में रखने का अर्थ औसत से नीचे रखना है जिसके संबंध में रजिस्ट्रार जनरल द्वारा तारीख 29.11.1996 के पत्र द्वारा याची को संसूचित किया गया था।''

13. जब ये टिप्पणियां अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गई थीं तो उसने उच्च न्यायालय के समक्ष तारीख 20.2.1997 को अभ्यावेदन फाइल किया था और प्रार्थना की कि उसका ''सी'' ग्रेड में वर्गीकरण अपास्त किया जाए। उच्च न्यायालय ने तारीख 12.12.1997 को यह अभ्यावेदन नामंजूर कर दिया था।

14. अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को, जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है, उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल करके चुनौती दी गई थी किंतु अपीलार्थी द्वारा किए गए अभिवाक् अस्वीकार किए गए थे और रिट याचिका खारिज की गई थी ।

15. अपीलार्थी के विद्वान काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी एक ईमानदार, मेहनती और शुद्ध हृदय का अधिकारी था जिसके विरुद्ध किसी भी समय कोई प्रतिकूल टिप्पणियां नहीं की गई थीं और उसकी सत्यनिष्ठा पर कभी भी संदेह नहीं किया गया था । यह दलील दी गई है कि उसके द्वारा पारित किया गया न्यायिक आदेश, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन मामले के कुछ अभियुक्तों को विशेष रूप से उस समय जमानत दी गई थी जब दूसरे पक्ष द्वारा एक प्रतिकूल मामला भी प्रस्तुत किया गया था, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता था । यह भी दलील दी गई है कि वहां ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर उच्च न्यायालय अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए सिफारिश कर सकता । यह दावा किया गया है कि संपूर्ण विनिश्चय प्रक्रिया मनमानी रीति में की गई थी ।

16. उच्च न्यायालय की ओर से और बिहार राज्य की ओर से हाजिर हुए विद्वान काउंसेल ने प्रबलता से यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने लोक हित में अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति का संकल्प करते हुए अपीलार्थी के कार्य और आचरण का कुल मिलाकर मूल्यांकन करते हुए सद्भावी विनिश्चय किया था और इसीलिए यह न्यायिक संवीक्षा किए जाने के लिए खुला नहीं था ।

17. इस प्रक्रम पर हम राज्य न्यायिक सेवाओं के मामले में उच्च न्यायालयों की भूमिका पर विचार करेंगे ।

18. भारतीय संविधान ने प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय की स्थापना किए जाने के लिए उपबंध करते हुए प्रत्येक राज्य में स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की है। संविधान ने प्रत्येक उच्च न्यायालय को अत्यंत व्यापक शक्तियां और विस्तृत अधिकारिता प्रदान की है जिसमें इसकी अधिकारिता क्षेत्र के अधीन आने वाले सभी न्यायालयों और अधिकरणों के ऊपर अधीक्षण की शक्ति भी सम्मिलित है । निस्संदेह न्यायपालिका का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक अधीनस्थ न्यायालय हैं क्योंकि यही वह न्यायालय हैं जिनमें न्यायपालिका का जनता से सीधा संबंध होता है। कार्यपालिका से अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए संविधान, 1950 में अनुच्छेद 233 से 237 का उपबंध किया गया है । अनुच्छेद 233, जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में है और यह उपबंध करता है कि किसी राज्य में जिला न्यायाधीश नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति तथा जिला न्यायाधीश की तैनाती और प्रोन्नति उस राज्य का राज्यपाल ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता को प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके करेगा । अनुच्छेद 236(क) के अधीन ''जिला न्यायाधीश'' को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :—

> " 'जिला न्यायाधीश' पद के अंतर्गत नगर सिविल न्यायालय का न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, अपर मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश और सहायक सेशन न्यायाधीश हैं ।''

''न्यायिक सेवा'' पद को अनुच्छेद 236 के खंड (ख) के अधीन परिभाषित किया गया है जो निम्न प्रकार है:—

> '' 'न्यायिक सेवा' पद से ऐसी सेवा अभिप्रेत है जो अनन्यत: ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनती है, जिनके द्वारा जिला न्यायाधीश के पद का और जिला न्यायाधीश के पद से अवर अन्य सिविल न्यायिक पदों का भरा जाना आशयित है।''

19. अनुच्छेद 234 निम्न उपबंध करता है :—

"**अनुच्छेद 234 — न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की भर्ती** —जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की किसी राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल द्वारा, राज्य लोक सेवा आयोग से और ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् उसके द्वारा इस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार की जाएगी ।"

20. अनुच्छेद 237 राज्यपाल को यह शक्ति देता है कि लोक अधिसूचना द्वारा इस अध्याय के उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों को कुछ वर्ग या वर्गों के मजिस्ट्रेटों पर लागू करे। एक बार ऐसी अधिसूचना के जारी होने पर, अनुच्छेद 234, 235 और 236 के उपबंध, उन मजिस्ट्रेटों को लागू होंगे और वे उच्च न्यायालय के नियंत्रणाधीन 'न्यायिक सेवा' के सदस्य हो जाएंगे ।

21. उनकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए अधीनस्थ न्यायालयों के ऊपर नियंत्रण, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 235 के अधीन उच्च न्यायालय में निहित किया गया है जो निम्न उपबंध करता है :—

"**अनुच्छेद 235: अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण** — जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण जिसके अंतर्गत राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों और जिला न्यायाधीशों के पद से अवर किसी पद को धारण करने वाले व्यक्तियों की तैनाती, प्रोन्नति और उनको छुट्टी देना है, उच्च न्यायालय में निहित होगा किंतु इस अनुच्छेद की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे किसी व्यक्ति से उस अपील के अधिकार को छीनती है जो उसकी सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाली विधि के अधीन उसे है या उच्च न्यायालय को इस बात के लिए प्राधिकृत करती है कि वह उससे ऐसी विधि के अधीन विहित उसकी सेवा की शर्तों के अनुसार व्यवहार न करके अन्यथा व्यवहार करे ।"

22. इस अनुच्छेद के अधीन, अधीनस्थ न्यायपालिका पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण व्यापक है और तैनाती, प्रोन्नति, छुट्टी देने को सम्मिलित करते हुए विभिन्न विषयों पर लागू होता है। तीन शब्द यथा, "तैनाती", "प्रोन्नति" और "छुट्टी देना" जो इस अनुच्छेद में प्रयुक्त किए गए हैं, केवल दृष्टांत स्वरूप प्रकृति के हैं और अधीनस्थ न्यायपालिका के अधिकारियों के ऊपर उच्च न्यायालय द्वारा नियंत्रण किए जाने की सीमा को परिसीमित नहीं करते हैं।

23. अब अनेक विनिश्चयों के द्वारा यह सुस्थापित है कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 235 में अभिव्यक्ति "नियंत्रण" में "अनुशासनिक नियंत्रण" सम्मिलित हैं (उदाहरण के लिए देखिए — "**मोहम्मद घोस** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**"[1] और "**मुख्य न्यायाधीश, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय** बनाम **एल० वी० ए० दीक्षितुलु**"[2] वाले मामले ।

24. जिला न्यायाधीशों के स्थानांतरण और काडर से बाहर पद पर या प्रतिनियुक्ति पर या प्रशासनिक पद इत्यादि पर तैनात जिला न्यायाधीशों को वापस बुलाने को सम्मिलित करते हुए स्थानांतरण, प्रोन्नतियां और पद पर पुष्टि करना भी उच्च न्यायालय के प्रशासनिक नियंत्रण के भीतर हैं। इसी प्रकार समयपूर्व और अनिवार्य सेवानिवृत्ति भी उच्च न्यायालय के "नियंत्रण" के भीतर हैं ।

25. ऊपर वर्णित संविधान की स्कीम से यह प्रकट है कि यद्यपि अधीनस्थ न्यायपालिका के अधिकारी मूलरूप से और आवश्यकतः सरकारी सेवक हैं, उनकी संपूर्ण सेवा उच्च न्यायालय के नियंत्रणाधीन हैं और राज्यपाल कोई नियुक्ति या पद से हटाने या अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए कार्रवाई सहित कोई अनुशासनिक कार्रवाई उच्च न्यायालय से "परामर्श" किए बिना नहीं कर सकता, जैसा कि अनुच्छेद 233 और अनुच्छेद 234 दोनों के सांविधानिक प्रभाव और अनुच्छेद 235 में इंगित किए गए उच्च न्यायालय के "नियंत्रण" द्वारा अपेक्षित है ।

---

[1] ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 246=1957 एस० सी० आर० 414.

[2] ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 193 = [1979] 1 एस० सी० आर० 26 = (1979) 3 एस० सी० सी० 34.

26. पद ''परामर्श'' से सामान्य अर्थ में ''सलाह लेना'' या ''मंत्रणा करना'' अभिप्रेत है । इस प्रकार राज्यपाल सलाह लेने वाला और उच्च न्यायालय सलाह देने वाला है जो कि राज्य न्यायिक सेवा से संबंधित नियुक्तियों, प्रोन्नतियों, अनुशासनिक कार्रवाई, अनिवार्य सेवानिवृत्ति इत्यादि सम्मिलित करते हुए सेवा के सभी मामलों के संबंध में एक विशेषज्ञ निकाय माना जाता है। चूंकि राज्यपाल जब तक कि वह उच्च न्यायालय से परामर्श नहीं करता, स्वत: कृत्य नहीं कर सकता । संविधान ने उच्च न्यायालय को एक महत्वपूर्ण और महान कर्तव्य सौंपा है कि राज्यपाल को सर्वश्रेष्ठ सलाह या राय दे; यह सलाह, समस्या जिस पर राज्यपाल द्वारा सलाह या परामर्श की ईप्सा की गई है, से संबंधित संसुगत सामग्री और अभिलेख को विचार में लेने के पश्चात् और उस पर सम्यक् रूप से चर्चा करने के पश्चात् दी जाती है। इसलिए यह राज्यपाल और उच्च न्यायालय के बीच आवश्यकत: विश्वास और भरोसे का विषय है । राज्यपाल को अपनी सलाह देने के मामले में उच्च न्यायालय मनमाने तौर पर कृत्य नहीं कर सकता अन्यथा यह उक्त विश्वास के प्रति विश्वासघात होगा। यदि सलाह अभिलेख पर की किसी सामग्री से समर्थित नहीं है और प्रकृति में मनमानी है तो इसका कोई बाध्यकारी महत्व नहीं होगा ।

27. ''**रजिस्ट्रार मद्रास उच्च न्यायालय** बनाम **आर॰ राजय्या**''[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पहले ही यह इंगित किया जा चुका है कि यद्यपि उच्च न्यायालय को अपनी प्रशासनिक अधिकारिता में, न्यायिक सेवा के किसी सदस्य की अनिवार्य सेवानिवृत्ति, उक्त संबंध में विरचित किए गए नियमों के अनुसार सिफारिश करने की शक्ति है, यह मनमाने तौर पर कृत्य नहीं कर सकता और यह विनिश्चय करने के लिए वहां सामग्री होनी चाहिए कि अधिकारी की उपयोगिता नहीं रही है । इस मामले में यह भी इंगित किया गया था कि अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय पर यह सांविधानिक बाध्यता है कि न्यायिक आदेशों से संबंधित सस्ते परिवादों से परेशान और तंग होने से न्यायिक अधिकारियों की संरक्षा और मार्गदर्शन करे जिससे कि अधिकारी बेईमान अधिवक्ताओं और वादकारियों द्वारा विधिक रूप से विचार में नहीं दुर्भावना से किए गए परिवादों से अप्रभावित होते हुए अपने कर्तव्यों का ईमानदारी और स्वतंत्रतापूर्वक निर्वहन कर सकें ।

28. ''**एम॰ एम॰ गुप्ता** बनाम **जम्मू और कश्मीर राज्य**''[2] वाले मामले में, यह इंगित किया गया था कि सामान्यत: नियम के रूप में, जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय द्वारा की गई सिफारिशें राज्य सरकार द्वारा स्वीकार की जानी चाहिएं और राज्यपाल को उसके आधार पर कृत्य करना चाहिए । यदि किसी विशिष्ट मामले में राज्य सरकार अच्छे और प्रबल कारणों से सिफारिशों को स्वीकार करना कठिन पाती है तो, इसे अपने मतों की बाबत सूचित करना चाहिए और उच्च न्यायालय से पूर्ण और प्रभावी परामर्श करना चाहिए । यह भी इंगित किया गया था कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यदि उच्च न्यायालय इस बाबत प्रभावित (संतुष्ट) है कि सरकार की आपत्ति अच्छे कारणों पर आधारित है, तो यह निस्संदेह अपनी पूर्वतर सिफारिशों पर पुनर्विचार करेगी । सक्षम और उचित न्यायिक प्रशासन मुख्य उद्देश्य होने के कारण, उच्च न्यायालय और राज्य सरकार, दोनों को प्रश्न पर आवश्यकत: तटस्थतापूर्वक विचार करना चाहिए ।

29. "**केरल राज्य** बनाम **ए॰ लक्ष्मीकुट्टी**''[3] वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह इंगित किया कि जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में उच्च न्यायालय से परामर्श करने का राज्यपाल का कर्तव्य उसकी शक्ति के प्रयोग में समाकलित है; उन्हें इसका प्रयोग अनुच्छेद 233(1) द्वारा उपबंध की गई रीति में करना चाहिए न कि इसके अन्यथा । सामान्यतया उच्च न्यायालय की सिफारिशें राज्य सरकार द्वारा स्वीकार की जानी चाहिएं और राज्यपाल को उनके आधार पर कृत्य करना होता है किंतु यदि राज्य सरकार ''अच्छे और प्रबल कारणों'' से उच्च न्यायालय से सहमत नहीं है तो इसे उच्च न्यायालय को विश्वास में लेना चाहिए और सिफारिशों के अनुसार कृत्य करने में इसके समक्ष आने वाली कठिनाईयों को इसके सम्मुख रखना चाहिए ।

30. अब हम मामले की गुणागुण के आधार पर परीक्षा करेंगे —

---

[1] ए॰ आई॰ आर॰ 1988 एस॰ सी॰ 1388 = (1988) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 211 = [1988] सप्ली॰ 1 एस॰ सी॰ आर॰ 332.

[2] ए॰ आई॰ आर॰ 1982 एस॰ सी॰ 1579 = [1983]1 एस॰ सी॰ सी॰ 593 = (1982) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 412.

[3] ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 331 = [1987] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 136 = (1986) 4 एस॰ सी॰ सी॰ 632.

"विभिन्न जिला न्यायाधीशों द्वारा चरित्र पुस्तक में की गई प्रविष्टियां हमारे द्वारा निर्णय के आरंभ के भाग में पहले ही उल्लेख की जा चुकी हैं। उच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न अवसरों पर की गई टिप्पणियां भी ऊपर वर्णन की गई हैं। यह भी पता चला है कि वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए अपीलार्थी की चरित्र पुस्तक में कोई प्रविष्टियां नहीं की गई थीं। इन वर्षों की प्रविष्टियां समकालिक रूप से एक ही समय लिखी गई थीं और अपीलार्थी को "सी" ग्रेड अधिकारी के रूप में वर्गीकृत किया गया था। उपर्युक्त तीन वर्षों की प्रविष्टियों के संदर्भ में इस न्यायालय में फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में उच्च न्यायालय द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति यह है कि वे "एक ही समय में" लिखी गई थीं और हम यह जोड़ सकते हैं कि अधिकारी को पद से हटने के लिए मजबूर किया गया था। वह तारीख जिस पर यह प्रविष्टियां की गई थीं मूल अभिलेख में या प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में इंगित नहीं की गई थीं। ये अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गई थीं और पूर्ण-न्यायालय द्वारा इन पर तारीख 30.11.1996 को विचार किया गया था किंतु यह स्पष्ट है ये प्रविष्टियां उस समय लिखी गई थीं जब स्थायी समिति ने अपीलार्थी को सेवानिवृत्त करने का अपना विचार पहले से ही बना लिया था क्योंकि इसने तारीख 6.11.1996 को कार्यालय को यह निदेश दिया था कि अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए नोट प्रस्तुत करें। उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि वरिष्ठ न्यायिक सेवा में उसकी प्रोन्नति के पूर्व की सभी प्रविष्टियां खराब नहीं थीं और कनिष्ठ न्यायिक सेवा या वरिष्ठ न्यायिक सेवा के सदस्य के रूप में उसकी सत्यनिष्ठा पर कभी संदेह नहीं किया गया था। भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन मामले में अग्रिम जमानत का प्रदान किया जाना, विशेष रूप से जब उसका विरोध करते हुए एक विरोधी मामला था, इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में विधिक रूप से अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने का आधार नहीं हो सकता था। अपीलार्थी द्वारा प्रदान की गई जमानत के रद्द किए जाने के लिए फाइल की गई याचिका, ग्रहण करने और अंततः उसे मंजूर करने के लिए विद्वान् न्यायाधीश की जो कोई भी भावना रही हो, तथ्य यह है कि यह पूर्ण सद्भाव के साथ न्यायिक अधिकारिता में पारित किया गया एक आदेश था। यह गलत आदेश किया गया हो सकता है किंतु यह बाह्य विचारणाओं पर आधारित और उनसे प्रेरित किया गया आदेश नहीं था। इस प्रकार यह ऐसा मामला था जहां ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर युक्तियुक्त रूप से यह राय की जा सकती हो कि अपीलार्थी का बिहार सेवा संहिता के नियम 74 के निबंधनानुसार सेवा से समयपूर्व सेवानिवृत्त किया जाना लोक हित में होगा।"

31. तीन वर्षों अर्थात् 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए एक ही समय में प्रविष्टियां लिखे जाने को विचार में नहीं लिया गया था। वे अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गई थीं और अगले दिन अर्थात् तारीख 30.11.1996 को पूर्ण न्यायालय ने उन्हें अभ्यावेदन करने का कोई अवसर दिए बिना सेवानिवृत्त करने का विनिश्चय किया तथापि उन्होंने अभ्यावेदन किया, किंतु यह एक वर्ष पश्चात् दिसंबर, 1993 में नामंजूर कर दिया गया था।

32. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उपर्युक्त तीन वर्षों की प्रविष्टियों को इस आधार पर अलग नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी को उन प्रविष्टियों के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था। उन्होंने इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा "**बैंकुंठनाथ दास** बनाम **मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, बारीपद**"[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया और दलील दी कि तद्धीन अधिकथित विधि को देखते हुए, वर्तमान मामले में पारित किया गया अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश विधिक रूप से चुनौती नहीं दिया जा सकता विशेषतया इसलिए क्योंकि चरित्र पुस्तक प्रविष्टियां जो संसूचित भी नहीं गई हैं, किसी व्यक्ति को लोक हित में अनिवार्य सेवानिवृत्त करने के लिए राय बनाने के प्रयोजन के लिए विचार में ली जा सकती हैं। हम इस दलील में कोई योग्यता नहीं पाते।

33. असंसूचित प्रतिकूल प्रविष्टियों से संबंधित प्रश्न इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों की विषयवस्तु रहा है। "**भारत संघ** बनाम **एम० ई० रेड्डी**"[2] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया था कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करते समय असंसूचित प्रतिकूल टिप्पणियों पर अवलंब लिया जा सकता है। किंतु बाद के दो विनिश्चयों में अर्थात्

---

[1] [1992] 2 उम० नि० प० 190 = ए० आई० आर० 1992 एस० सी० 1020 = (1992) 2 एस० सी० सी० 299.

[2] [1980] 3 उम० नि० प० 907 = ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 563 = (1980) 2 एस० सी० सी० 15.

बृजमोहन सिंह चोपड़ा बनाम **पंजाब राज्य**[1] और **वैद्यनाथ महापात्र** बनाम **उड़ीसा राज्य**[2] वाले मामलों में यह अधिकथित किया गया था कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करते समय असंसूचित प्रतिकूल टिप्पणियों पर विधिक रूप से अवलंब नहीं लिया जा सकता । **वैद्यनाथ वाले मामले**[2] में यह भी अधिकथित किया गया था कि यदि प्रतिकूल टिप्पणियों के विरुद्ध अभ्यावेदन लम्बित था तो, प्रतिकूल प्रविष्टयां जिनके विरुद्ध अभ्यावेदन किया गया है, को विचार में नहीं लिया जा सकता जब तक कि अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया जाता और उसका निपटारा नहीं किया जाता ।

34. इन दोनों विनिश्चयों पर **बैंकुठ नाथदास**[3] वाले उपर्युक्त मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था और उन्हें उलट दिया गया था और निम्नलिखित पांच सिद्धांत अधिकथित किए गए थे :—

"(i) अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दण्ड नहीं है। उसमें कोई कलंक या अवचार का कोई सुझाव विवक्षित नहीं है।

(ii) आदेश, सरकार द्वारा यह राय बनाए जाने पर पारित किया जाना है कि सरकारी सेवक को अनिवार्यतः सेवा-निवृत्त करना लोक हित में है। आदेश, सरकार के आत्मपरक समाधान के आधार पर पारित किया जाना है।

(iii) अनिवार्य, सेवानिवृत्ति के आदेश के संदर्भ में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई स्थान नहीं है । इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायिक संवीक्षा बिल्कुल ही अपवर्जित है । उच्च न्यायालय या यह न्यायालय अपील न्यायालय के रूप में मामले पर विचार नहीं करेगा किन्तु वह उस स्थिति में हस्तक्षेप कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि —

(क) आदेश दुर्भावना से पारित किया गया है, या

(ख) वह किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, या

(ग) वह इस अर्थ में मनमाना है कि कोई भी युक्तिमान व्यक्ति प्रदत्त सामग्री के आधार पर अपेक्षित राय नहीं बनाएगा, संक्षेप में यदि आदेश अनुचित पाया जाता है ।

(iv) सरकार (या यथास्थिति पुनर्विलोकन समिति) को, निस्संदेह, पश्चात्वर्ती वर्षों के दौरान कर्मचारी के कार्य और अभिलेख पर विचार करना होगा । इस प्रकार विचार किए जाने वाले अभिलेख में स्वाभाविक रूप से गोपनीय अभिलेख/चरित्र पंजीकाओं में की गई प्रविष्टियां (अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की) सम्मिलित होंगी । यदि किसी सरकारी सेवक को प्रतिकूल टिप्पणियों के होते हुए भी, उच्चतर पद पर प्रोन्नत किया जाता है तो ऐसी टिप्पणियों का कोई महत्व नहीं रह जाता है, विशेष रूप से उस समय जब प्रोन्नति, योग्यता (चयन) पर आधारित हो, न कि ज्येष्ठता पर ।

(v) अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश न्यायालय द्वारा केवल इस आधार पर अभिखण्डित नहीं किया जा सकता है कि उसके पारित किए जाने के समय असंसूचित प्रतिकूल टिप्पणियों को भी ध्यान में रखा गया था । स्वतः यह परिस्थिति हस्तक्षेप के लिए आधार नहीं हो सकती है । हस्तक्षेप केवल ऊपर (iii) में वर्णित आधारों पर ही अनुज्ञेय है। इस पहलू पर ऊपर पैरा 29 से 31 में विचार किया जा चुका है ।"

35. इस विनिश्चय का **डाक-तार बोर्ड** बनाम **सी॰ एस॰ एन॰ मूर्ति**[4], **सचिव, हरिजन और जनजातीय कल्याण विभाग, भुवनेश्वर** बनाम **नित्यानंद पति**[5] और **भारत संघ** बनाम **वी॰ पी॰ सेठ**[6] वाले मामलों में अनुसरण किया गया है और

[1] [1987] 3 उम॰ नि॰ प॰ 531 = ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 948 = (1987) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 188.

[2] [1990] 3 उम॰ नि॰ प॰ 491 = ए॰ आई॰ आर॰ 1989 एस॰ सी॰ 2218 = (1989) 4 एस॰ सी॰ सी॰ 664.

[3] [1992] 2 उम॰ नि॰ 190 = ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1020 = (1992) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 299.

[4] ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1368 = (1992) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 317.

[5] ए॰ आई॰ आर॰ 1993 एस॰ सी॰ 383 = (1993) सप्ली॰ 2 एस॰ सी॰ सी॰ 391.

[6] ए॰ आई॰ आर॰ 1994 एस॰ सी॰ 1261.

एम॰ एस॰ बिंदरा बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] और **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **सूर्यकांत चुन्नी लाल**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इस पर पुनः विचार किया गया है ।

36. बैंकुठ नाथ दास[3] वाले उपर्युक्त मामले में व्यक्त किया गया पांचवां सिद्धांत जो ऊपर वर्णन किया जा चुका है, स्वतः यह अनुध्यात करता है कि मात्र यह परिस्थिति कि असंसूचित प्रतिकूल टिप्पणियों को विचार में लिया गया था, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश में हस्तक्षेप किए जाने के लिए आधार गठित नहीं करेगा । विद्वान् न्यायाधीशों ने निर्णय के पैरा 32 में निम्नलिखित मत व्यक्त किए :—

> "पैरा 32 — हमें इस प्रकार न समझा जाए कि हमारे कहने का अर्थ यह है कि प्रतिकूल टिप्पणियों के संसूचित किए जाने की आवश्यकता नहीं है या (ऐसी टिप्पणियों के विरुद्ध) सरकारी सेवक द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदनों पर , यदि कोई हो,विचार किए जाने या उनका निपटारा किए जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिकूल टिप्पणियां सामान्य अनुक्रम में संसूचित की जानी चाहिएं, जैसा कि इस संबंध में नियम/आदेशों द्वारा अपेक्षित है। उनके विरुद्ध किए गए किन्हीं भी आवेदनों पर युक्तियुक्त शीघ्रता से, सामान्य अनुक्रम में विचार किया जाएगा और किया भी जाना चाहिए । हमारे कहने का केवल यही अर्थ है कि मूल नियम 56 (ञ) (या उसके समरूपी नियम) के अधीन कार्रवाई करने के लिए, यथास्थिति, ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यावेदनों के निपटारे या अंतिम निपटारे की प्रतीक्षा नहीं की जानी चाहिए । कुछ मामलों में ऐसा हो सकता है कि पिछले कुछ वर्षों की कुछ प्रतिकूल टिप्पणियां संसूचित नहीं की गई हैं या यदि संसूचित की गई हैं तो उस, संबंध में प्राप्त अभ्यावेदन विचारार्थ लम्बित हैं। केवल इस आधार पर ही मूल नियम 56(ञ) के अधीन कार्रवाई को विधारित करना (रोके रखना) आवश्यक नहीं है । यह उपधारणा करने का कोई कारण नहीं है कि पुनर्विलोकन समिति या सरकार यदि वह ऐसी असंसूचित टिप्पणियों पर ध्यान देना उचित समझती है, इस तथ्य से अवगत नहीं होगी कि वे सरकारी सेवक को संसूचित नहीं की गई हैं और उसे उनके बारे में स्पष्टीकरण देने या उनका खण्डन करने के लिए अवसर नहीं दिया गया । इसी प्रकार यदि सरकारी सेवक द्वारा कोई अभ्यावेदन किया गया है तो उस पर भी विचार किया जाएगा । हम पुनः इस बात पर जोर देना उचित समझते हैं कि न केवल पुनर्विलोकन समिति में सामान्यतया उच्च और उत्तरदायी अधिकारी होते हैं, बल्कि शक्ति भी केवल सरकार में ही निहित होती है, किसी छोटे पदधारी में नहीं। इस बात की संभावना नहीं है कि अनेक वर्षों तक प्रतिकूल टिप्पणियां असंसूचित रहें और फिर भी उन्हें कार्रवाई का प्राथमिक आधार बनाया जाए ।.ऐसी असंभाव्य स्थिति से, यदि वस्तुतः वह मौजूद हो भी, विधि में दुर्भाव उपदर्शित होता है । इस संबंध में हम यह उल्लेख करना उचित समझते हैं कि संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 द्वारा उपबंधित उपचार कोई कम महत्वपूर्ण रक्षोपाय नहीं है । उन दबावों के होने पर भी, जो सुविदित हैं ; उक्त उपचार असद्भावपूर्ण अनुचित या मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध प्रभावी नियंत्रण है ।"

37. यह मत इंगित करते हैं कि प्रतिकूल टिप्पणियां यदि कर्मचारी की चरित्र पुस्तक में "सामान्य अनुक्रम" में अभिलिखित की जाती हैं तो वे उसे संसूचित की जानी चाहिए और यदि उन टिप्पणियों के विरुद्ध कोई अभ्यावेदन किया जाता है, तो उक्त अभ्यावेदन सामान्य अनुक्रम में शीघ्र ही निपटाया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त इस पर बल दिया गया था कि तथापि प्रतिकूल टिप्पणियों के विरुद्ध अभ्यावेदन के लम्बित होने या उक्त अभ्यावेदन का निपटारा न किया जाना, उक्त प्रविष्टि के आधार पर भी एफ॰ आर॰ 56(ञ) या उसके समतुल्य किसी उपबंध के अधीन कर्मचारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए कार्रवाई किए जाने को निवारित नहीं करेगा ।

38. वर्तमान मामले में, वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए प्रतिकूल टिप्पणियां सामान्य अनुक्रम में अभिलिखित नहीं की गई थीं अपितु "एक ही समय में" लिखी गई थीं और वह भी तब जब उच्च न्यायालय की स्थायी समिति ने अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने की राय पहले ही बना ली थी । इन टिप्पणियों के विरुद्ध किये गए अभ्यावेदन पर शीघ्रता से विचार नहीं किया गया था अपितु उच्च न्यायालय द्वारा एक वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् निपटारा किया गया था । यह टिप्पणियां जो अपीलार्थी की चरित्र पुस्तक में एक ही समय में अभिलिखित की गई थीं और

---

[1] (1998) 7 एस॰ सी॰ सी॰ 310 = (1998) 6 जजमेंट टुडे एस॰ सी॰ 34.

[2] (1998) 8 जजमेंट टुडे एस॰ सी॰ 326.

[3] [1992] 2 उम॰ नि॰ प॰ 190 = ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1020 = (1992) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 299.

अपीलार्थी को तारीख 29.11.1996 को संसूचित की गईं थीं, पर पूर्ण न्यायालय द्वारा तारीख 30.11.1996 को विचार किया गया था जिसने अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिर्वृत्ति करने की प्रस्थापना को अनुमोदित किया था। अपीलार्थी को विद्वान् न्यायमूर्ति बी॰ के॰ राय द्वारा 1990 में "बी" प्लस वर्गीकृत किया गया था। अगले तीन वर्षों के लिए कोई वर्गीकरण नहीं किया गया था और जब उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए कार्रवाई इस आधार पर आरंभ की गई कि उसने एक मामले में भारतीय दण्ड संहिता , 1860 की धारा 307 के अधीन अग्रिम जमानत प्रदान की थी, वर्ष 1991-92,1992-93 और 1993-94 के लिए वर्गीकरण "एक ही बार में" किया गया था जो अयुक्तियुक्त है और ऋजु नहीं है । इसके अतिरिक्त, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए 1996 में आदेश किया गया था । वर्ष 1994-95 के लिए और 1995-96 के लिए अपीलार्थी का क्या वर्गीकरण किया गया था, यह हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए मूल सेवा-अभिलेख में इंगित नहीं किया गया है । इन विसंगतियों के साथ इस मामले की अन्य विस्मयजनक परिस्थितियों के आधार पर हमारा यह मत है कि वर्ष 1991-92, 1992-93 और 1993-94 के लिए अपीलार्थी का "सी" श्रेणी का अधिकारी होने के रूप में वर्गीकरण विधिक रूप से विचार में नहीं लिया जा सकता था । यदि इन टिप्पणियों को अवर्जित किया जाता है तो **बैंकुठनाथ दास**[1] वाले मामले में अधिकथित (iii) सिद्धांत तुरन्त ही लागू हो जाता है और अपीलार्थी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति करने की आक्षेपित कार्रवाई इस अर्थ में मनमानी कही जा सकती है कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था कि अपीलार्थी की न्यायिक अधिकारी के रूप में कोई उपयोगिता नहीं रही थी और वह बेकार हो गया था जिसके कारण उसे हटा दिया जाना चाहिए ।

39. उपर्युक्त कारणों से, अपील मंजूर की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया तारीख 22.7.1998 का निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट याचिका मंजूर की जाती है और राज्य सरकार द्वारा पारित किया गया तारीख 2.8.1997 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश, अपीलार्थी को सभी पारिणामिक फायदे देते हुए अभिखण्डित किया जाता है । खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता ।

अपील मंजूर की गई ।

अनू॰